International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 41-43

प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना

डॉ0 प्रियंका जायसवाल

प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर नवोदय विद्यालय देहरादून, उत्तराखण्ड, भारत।

प्रस्तावना

प्रेमचंद युग भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का चेतना युग था। देश के प्रत्येक नागरिक में हिन्दुस्तान को आजादी दिलाने की होड़ लगी थी। देश का वातावरण बम, गोंलो, आन्दोलनों तथा सत्याग्रहों से युक्त था। सम्पूर्ण देश में प्रबल राष्ट्रीय चेतना जागृत हो चुकी थी। कांग्रेस की विचारधारा भी गरमदल व नरमदल में विभाजित हो चुकी थी। कृषि पर आधारित आजीविका चरमरा गई थी। अंग्रेजों के प्रतिनिधियों के रुप में कार्य कर रहे जमींदार किसानों का शोषण कर रहे थे। येन–केन प्रकारेण किसानों पर कर्ज का बोझ बढ़ता ही जा रहा था। शोषक के रुप में अपना पंजा फैलाने वाले जमींदार व महाजन वर्ग के विरोध में शोषित वर्ग के मध्य क्रांति की चेतना जग रही थी। देश का किसान भी इससे अछूता न रहा। राजनीतिक अन्तर्द्वंद भी विद्यमान था। इस सम्बंध में श्री सत्यकेतु विद्यालंकार का यह कथन दृष्टव्य है – ''सन् 1905 का भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता के इतिहास में बहुत महत्व है। इसी समय कांग्रेस में एक नये दल का प्रादुर्भाव हुआ। जो केवल भाषण देने व प्रस्ताव पास करने पर भी विश्वास नहीं करता था अपितु स्वराज्य प्राप्ति के लिए क्रियात्मक पग उठाने की नीति का प्रतिपादक था।''[1] सन् 1930 तक आते–आते सम्पूर्ण देश में राजनीतिक हलचल मच गई। आंदोलनों तथा सत्याग्रहों का तांता बंध गया। जनता में प्रचण्ड जोश तथा अदम्य उत्साह था। समाज का प्रत्येक वर्ग खुलकर इसमें भाग ले रहा था। ''बड़े आदमी– बंगलों और महलों में रहते हैं। मोटरों पर घूमतें हैं। साहबों के साथ दावत खाते हैं। कौन सी तकलीफ है? मर तो हम रहे हैं। जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं। इस वक्त कोई टेनिस खेलता होगा। कोई चाय पीता होगा। कोई ग्रामोफोन लिए गाने सुनता होगा, तो कोई पार्क से सैर करता होगा।''[2] और इस आंदोलन में सबसे बड़े बाधक यदि हैं तो ये बड़े आदमी हैं– ''सच पूछो, तो इन बड़े आदमियों ने ही हमारी मिट्टी खराब कर रखी है। इन्हें सरकार ने कोई अच्छी सी जगह दे दी। बस उसका दम भरने लगे।''[3]

इस युग की राजनीतिक स्थिति का चित्रण करते हुए श्री पट्टाभिसीता रमैया ने लिखा है कि– ''राजनीतिक दृष्टि से भारत का दर्जा जितना अंग्रेजो के जमाने में घटा है। उतना पहले कभी नहीं घटा था। किसी भी सुधार योजना से जनता में वास्तविक राजनीतिक सत्ता नहीं आई है। हमारे बड़े से बड़े आदमी को भी विदेशी सत्ता के सामने सिर झुकाना पड़ता है। अपनी राय आजादी से जाहिर करने और आजादी से मिलने–जुलने के हमारे हक छीन लिये गये हैं, और हमारे बहुत से देशवासी निष्कासित कर दिये गये हैं। हमारी शासन की सारी प्रतिभा मारी गई है और सर्वसाधारण को गाँवों के छोटे–छोटे ओहदों और मुंशीगिरी से संतोष करना पड़ता है।''[4] असंतोष, असहयोग का रुप धारण कर रहा था और विरोध के स्वर निरन्तर मुखर होते जा रहे थे।

राष्ट्र की इन समस्त हलचलों से प्रेमचंद वाकिफ ही नहीं थे, वरन् एक स्वतंत्रता सेनानी के रुप में इसमें प्रतिभाग भी कर रहे थे। नमक कानून – के विरोध में सपत्नीक भाग लिया और जेल भी गये। गाँधी जी जो कार्य राजनीति के माध्यम से करना चाहते थे, प्रेमचंद ने वही कार्य साहित्य के माध्यम से किया। प्रेमचंद व्यक्तिगत रुप से पराधीनता से क्षुब्ध थे। स्वतंत्रता के प्रति चिंतित थे। सन् 1930 ई0 में श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि ''मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतंत्रता संग्राम में सफल हों।''[5] प्रेमचंद की यही व्यक्तिगत अनुभूति, स्वतंत्रता की दृढ़ता और राजनीतिक परिस्थितियों के उतार–चढ़ाव का पूर्ण विश्लेषण उनकी औपन्यासिक कृतियों में परिलक्षित होता है।

'प्रेमाश्रम' महायुद्ध के बाद का उपन्यास है। भारत को शान्ति तथा सहयोग का पुरस्कार 'रोलेट एक्ट' व जलियावाला बाग हत्याकांड के रुप में मिल चुका था। अंग्रेजों का दमन बढ़ता जा रहा था। संसार नयी चेतना का बिगुल फूँक रहा था। सोवियत रूस नई क्रांति का संदेश दे रहा था। जिससे भारत का किसान भी परिचित था। ''बलराज' तक के पास बल्गारिया के किसानों की सूचना रहती थी, पर भारत का स्वतंत्रता आंदोलन किसानों से अछूता था। यह आवश्यकता अनुभव की जा रही थी कि आंदोलन में किसानों की समस्याओं को भी एक अंग बनाकर इसे व्यापकता प्रदान की जाय जिससे दासता की श्रृंखला सशक्त रुप में नष्ट की जा सके। जमीन का वास्तविक मालिक किसान था। उसके पसीने की बूँदों से धरती हरी होती थी किंतु उपभोग के अधिकारी अंग्रेज तथा जमींदार दलाल थे।''[6] पूरा सरकारी महकमा कमजोरों की आवाज को दबाने में लगा था। गौस खां, फैजू, डिप्टी तहसीलदार दारोगा दयाशंकर सभी किसानों को फँसाने का प्रयास करते हैं।

प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में यह स्पष्ट किया है कि दोष व्यक्ति विशेष को नहीं दिया जा सकता। किसी बुराई के लिए गौस खाँ और दयाशंकर उतरदायी नहीं हैं। उत्तरदायी है तो यह दूषित व्यवस्था प्रणाली। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में प्रेमचंद ने स्पष्ट किया है– गौस खाँ की मृत्यु के पश्चात् फैजू के अत्याचार और बढ़ जाते हैं। मानवता का सम्मान करने वाला ज्वाला सिंह भी डिप्टी कलैक्टर बनकर बहक जाता है। ज्ञानशंकर एक ऐसे नये जमींदार का प्रतीक है, जिसकी नई शिक्षा ने उसे अपने अस्तित्व के अतिरिक्त अफसर और नौकरशाही अधिक दी है। किसानों की समस्याओं से उसे कोई सम्बंध नहीं। उसे अपना लगान– इजाफा चाहिए तथा आसामी उसके कर्मचारियों के अमानवीय कृत्यों को सिर झुकाकर सहन करते रहें। इस युग के किसान अफसरशाही से त्रस्त थे। अफसरों के शासकीय भ्रमण ग्रामीणों के दुख दर्दों को सुनने के लिए नहीं अपने आराम, अफसरशाही के प्रदर्शन, मुफत का माल उड़ाने तथा किसानों पर अत्याचार करने के लिए होते थे – ''वह लोग बड़ा अंधेर मचाते हैं। आते हैं, इंतजाम करने लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते हैं। इससे कहीं अच्छा तो यही था कि दौरे बंद हो जाते। यही न होता कि मुकदमेवालों को सदर जाना पड़ता, इस आफत से तो जान बचती।''[7] राष्ट्रभक्ति के इस सैलाब में सच्चे और स्वार्थी की पहचान करना कठिन हो जा रहा था। कभी–कभी व्यक्तिगत स्वार्थ सामूहिक हित पर भारी पड़ता। प्रेमचंद ने सही पक्ष की सराहना करते हुए देशभक्ति की रामनामी चादर ओंढ़ने वालों की कुछ आलोचना की है, ''हमारा प्रतिनिधित्व सम्पूर्णतः हमारी

स्वार्थपरता और सम्मानलिप्सा पर निर्भर है। हम जाति के हितैषी नहीं है, हम उसे केवल स्वार्थ सिद्धि का यंत्र बनाये हुए हैं।''[8]

'रंगभूमि' का रचना युग देश में गाँधीवादी विचारधारा के प्रसार का युग रहा है। इस समय देश में चलाये जाने वाले विभिन्न आंदोलन–असहयोग, सत्याग्रह, बहिष्कार आदि अपनी चरम–सीमा पर थे। अमृतराय् 'रंगभूमि' को युग से इतना प्रभावित मानते हैं कि तथ्यों के संदर्भ में उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक नेताओं की छाया तक उसमें खोज डाली है। जैसे ''चौगाने हस्ती'' 1 अप्रैल, 1924 को तैयार हुई और अजब नहीं कि नये और पुराने खून के इसी टकराव की तरफ मुंशी जी का इशारा हो और यह भी साफ है कि उनकी हमदर्दी नये खून के साथ है। जिसका प्रतिनिधित्व उस समय पं0 जवाहर लाल नेहरु कर रहे थे। सोफिया के चरित्र में एनी बेसेण्ट की छाया है। सूरदास के रुप में गांधी जी की उद्भावना सिद्ध है। बाप–बेटे कुँवर भरतसिंह और विनय के रुप में मोतीलाल और जवाहर लाल नेहरु का संकेत बराबर मिलता है।..... विनय सेवा दल के एक जत्थे के साथ राजस्थान जाता है और वहां पकड़ कर जेल में डाल दिया जाता है। यही चीज जवाहर लाल नेहरु के साथ तब हुई जबकि वह पंजाब की एक रियासत नामा में गये और वहाँ पकड़ लिये गये.....[9] तब तक देशवासियों को अंग्रेजों की सच्चाई भी पता चल गयी थी कि उनका मकसद केवल भारत को लूटना है न कि समृद्ध बनाना है। प्रेमचंद ने रंगभूमि' उपन्यास में अपने एक पात्र द्वारा इसका खुलासा भी किया है ''अब हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि केवल हमको पीसकर तेल निकालने के लिए हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए, हमको अंतकाल तक चक्की का बैल बनाये रखने के लिए हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।''[10]

प्रेमचंद का मानना था कि केवल अंग्रेजों को देश से निकाल देने से ही आजादी की प्राप्ति नहीं हो जायेगी। जब तक कि सुशासन और स्वशासन की भावना देशवासियों में नहीं आयेगी। जब तक सामूहिक हित की भावना नहीं जगेगी, तब तक देश को सम्पूर्ण आजादी भी नहीं प्राप्त होगी। उनका विश्वास था कि सत्ता का विकेन्द्रीकरण शोषकों के हाथ में नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे वकीलों, जमींदारों, जागीरदारों, पूँजीपतियों के हाथ में शासन की बागडोर देने से राष्ट्रीय भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलेगा। इसी संदर्भ में उन्होंने तत्कालीन नेताओं से कहा था, 'अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे। पहले अपना उद्धार करलो। गरीबों का घर लूट कर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है''[11] प्रेमचंद जी ने ''एक ओर तो इन तथाकथित देशभक्तों की कलाई खोली तो दूसरी ओर निम्नवर्ग के प्रतीक देवीदीन खटिक जैसे व्यक्ति को प्रस्तुत किया जो जवान बेटों को मादरे वतन के लिए बलिदान कर रहे थे।''[12]

'गबन' उपन्यास में वर्णित पुलिस राज के हथकण्डों का प्रयोग तत्कालीन राजनीति का पर्दाफाश करता है– ''सन् 1929 और 1930 में मेरठ 'कांसपिरेसी' केस और लाहौर–दिल्ली का बम कांड हुआ। जिसमें एक मुखबिर पकड़ा गया। मुखबिर को पुलिस वालों ने ऐसा बयान हटाया था कि उसकी लपेट में जवाहरलाल भी आ गये थे। पुलिस के उन तिकड़मों का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से गबन लिखते समय लेखक के ऊपर था।[13]

अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' वाली नीति से पूरे हिन्दुस्तान में दंगे भड़का रखे थे। जगह–जगह पर साम्प्रदायिक हिंसा भीषण रूप धारण कर रही थी। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के जानी दुश्मन बने हुए थे। अविश्वास की भावना ने भाईचारा समाप्त कर दिया था। प्रेमचंद ने भी देश की इन विषम परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया और अपनी लेखनी चलायी। 'सेवासदन' उपन्यास में एक मुसलमान पात्र तेगअली हिन्दुओं के प्रति घृणा प्रकट करते हुए कहता है कि – ''अगर आप मुदर्रिस है तो हिन्दू लड़कों को फेल कीजिए। तहसीलदार है तो हिन्दुओं पर टैक्स लगाइये, मजिस्ट्रेट है तो हिन्दुओं को सजाएं दीजिए, अगर आप चोर है तो किसी हिन्दू के घर डाका डालिए। अगर आपको हुस्न या इश्क का खब्त है तो किसी हिन्दू नाजनीन को उठाइये तब आप कौम के खादिम, कौम के मुहसिन, कौमी किश्ती के नाखुदा सबकुछ हैं।''[14] दूसरी ओर हिन्दुओं का मुसलमानों पर आरोप था– ''हमारे मुस्लिम भाइयों ने हमारी गरदन बुरी तरह पकड़ी है। छिपे–छिपे चोट करना कोई मुसलमानों से सीख लें।''[15]

'कायाकल्प' उपन्यास (1923–24) के रचनाकाल तक देश में फूट, घृणा तथा संघर्ष का यह ज़हर फैल कर अपना प्रभाव दिखाने लगा था। दंगा–फसाद करने और करवाने वालों की कोई कमी न थी। केवल अवसर की प्रतीक्षा रहती– ''हिन्दुओं और मुसलमानों में आये दिन जूतियाँ चलती रहती थीं। जरा–जरा सी बातों पर दोनों दलों के सिरफिरे जमा हो जाते और दो–चार के अंग भंग हो जाते।'[16] धर्म के नाम पर दोनों जातियों में इतना विद्वेष भर गया था कि वे एक–दूसरे को सकुशल देखने को भी तैयार नहीं थे। इस खेल के सूत्रधार अंग्रेज भारत की ऐसी दुर्दशा को देखकर प्रसन्न थे और अपनी नीति पर गर्व से अट्टहास कर रहे थे।

'कर्मभूमि' उपन्यास सन् 1930 से 32 तक भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का सच्चा इतिहास है। देश का बच्चा–बच्चा ब्रिटिश सरकार के नेस्तनाबूद करने के मंसूबे बांध रहा था। सामाजिक कुरीतियों को मिटाने को अनेक सुधारक सामने आ रहे थे नौकरशाही व साम्राज्यवादी नीतियों को कुचला जा रहा था। इस काल में किसान की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। हालाकि यह वर्ग भी अपने अधिकारों की मांगों को रखता आ रहा था जिसका चित्रण प्रेमचंद ने कर्मभूमि में बखूबी किया है। ''कांग्रेस का लगान बंदी आंदोलन तब तक चलाने का इरादा था जब तक कि किसानों की उचित मांगों के बारे में सरकार से समझौता नहीं हो जाता। सरकार चाहती थी कि आंदोलन बंद कर दिया जाय, तब बातचीत शुरू की जाये। आंदोलन चलता रहा। सरकार ने सैकड़ों अच्छे किसान कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिए और किसानों पर ज्यादती की।''[17] इस उपन्यास के अधिकतर नेता बंदी बना लिये जाते हैं तथा पुलिस गाँव में रखी जाती है। फसलें नीलाम कर दी जाती हैं। गांव जला दिये जाते हैं तथा किसानों के प्रति अमानवीय और पाशविक कृत्य किये जाते हैं। इस प्रकार यह उपन्यास स्वाधीनता आंदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास है। जहाँ हर वर्ग स्वतंत्रता के युद्ध में आगे बढ़ता है। राष्ट्रीय नेताओं की गोल–मोल नीति, अंग्रेजों की फूट डालो वाली राजनीति के समर्थक प्रेमचंद नहीं हैं। इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में इस तथ्य पर बल दिया है कि हिन्दुओं और मुसलमानों की समस्याएं एक है और इन्हें मिलकर ही हल करना चाहिए। उन्होंने 'कर्मभूमि' उपन्यास में अमरकांत जैसे नेताओं को, जो गरीब मुसलमानों को टालने का प्रयास करते थे, फटकार दिलवायी है।[18] इस युग में ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों से जनता इतनी त्रस्त थी कि वह शासन को मुहँतोड़ जवाब देने के लिए तत्पर थी।

1914–18 के महायुद्ध से भारत के राष्ट्रीय आंदोलनों को बहुत बल मिला। भारत की जनता में नवस्फूर्ति का संचार हुआ। ''..... इसी समय कांग्रेस ने यह भी आंदोलन किया कि विदेशी वस्त्र की दुकानों और शराब की भट्टियों पर धरना किया जाए..... सन् 1920–21 के असहयोग आंदोलन और 1930–31 के सत्याग्रह आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि सर्वसाधारण जनता में अन्याय का प्रतिरोध करने की शक्ति और स्वराज्य की आकांक्षा उत्पन्न हो गई।''[19]

उपरोक्त राजनीतिक परिदृश्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का यह चित्रण वास्तव में तत्कालीन युग का इतिहास है। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव का यह कथन अत्यंत समीचीन है – ''प्रेमचंद के उपन्यास राष्ट्रीय जागृति के इतिहास हैं। कालांतर में यदि इस समय का इतिहास लुप्त हो जाय और इनकी रचनाएं बची

रह सके तो इन्हीं के आधार पर विचारशील देश की सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागृति का व्यापक आभास प्राप्त किया जा सकता है।''[20]

संदर्भित ग्रंथ सूची

1. सत्यकेतु विद्यालंकार – भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ0–573
2. जुलूस कहानी– मानसरोवर भाग–5, पृ0–49, संस्करण 1965
3. वहीं, पृ0–50
4. पट्टाभिसीमारमैया– कांग्रेस का इतिहासः प्रथम खण्ड, पृ0–289 (हिंदी संपादक– हरिभाऊ उपाध्याय)
5. बनारसी दास चतुर्वेदी, संस्मरण – पृ0–67
6. प्रेमाश्रम, पृ0–279, संस्करण – 1962
7. वहीं, पृ0–50
8. वहीं, पृ0 –265
9. अमृतराय – कलम का सिपाहीः प्रेमचंद, पृ0 342–343
10. रंगभूमि, पृ0– 542, संस्करण – 1965
11. गबन, पृ0– 171–172, संस्करण – 1967
12. वहीं, पृ0–170
13. डा0 त्रिभुवन सिंह – हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ0–78
14. सेवासदन, पृ0–128, संस्करण – 1966
15. वहीं, पृ0– 131
16. कायाकल्प, पृ0– 194, संस्करण – 1959
17. श्री कृष्णदास – स्वतंत्रता संग्राम के 90 वर्ष, पृ0 167
18. कर्मभूमि, पृ0 61, संस्करण – 1965
19. सत्यकेतु विद्यालंकार– संस्करण – 1965, पृ0–575
20. शिवनारायण श्रीवास्तव – हिन्दी उपन्यास, पृ0–135